सम्पादकीय

गुरुओं द्वारा सांझीवालता का उपदेश

डॉ. कुलदीप चंद अग्निहोत्री

भारत के मध्यकालीन कालखण्ड की दश-गुरु परंपरा की महत्ता अनेक दृष्टियों से स्वयं सिद्ध है। दरअसल मध्यकाल, जिसे भारतीय साहित्य में **भक्ति काल** के नाम से भी जाना जाता है, पराजित हो चुके जनसामान्य में नव ऊर्जा संचार करने का सफल प्रयोग था। अरबों, तुर्कों, ईरानियों, अफगानियों और मध्य एशिया के मतांतरित हो चुके मंगोलों (जो भारत में आकर मुगल नाम से प्रसिद्ध हुए) के आक्रमणों के बाद समाज का मनोबल टूट चुका था। लगभग सारा उत्तर भारत इन विदेशी आक्रमणकारियों के शिकंजों में फंस चुका था और यह आक्रांता दक्षिण और पूर्व की ओर भी बढ़ने का प्रयास कर रहे थे। इसी संक्रमण काल में भारत में संत समाज की एक ऐसी जमात सक्रिय हुई, जिसने देशभर में घूम-घूमकर लोगों में साहस बढ़ाया। **दश-गुरु परंपरा इसी प्रयोग का सफल परिणाम था।** प्रथम गुरु श्री नानक देव जी से लेकर दशम् गुरु श्री गोबिंद सिंह जी तक सभी गुरुओं ने जनसामान्य का मनोबल बढ़ाने के लिए और अन्याय के खिलाफ लड़ने की उनकी क्षमता को पुर्नजागृत करने के लिए देश के चप्पे चप्पे का भ्रमण किया। संकट की इस घड़ी में सारे देश को एक होना था। अपने समस्त मतभेद भुलाने की बात सशक्त तरीके से समाज के सामने रखते हुए, गुरु नानक देव जी तो अपने इन अभियानों में बग्दाद तक हो आए। **जन्मसाखियों** में कहा गया है कि गुरु नानकदेव जी दक्षिण में रामसेतु तक गए और उसके बाद श्रीलंका भी पहुंचे। श्री गुरुतेग बहादुर ने भी सुदूर असम तक की यात्रा की। दशम् गुरु गोबिंद सिंह जी का जन्म बिहार में पाट्लीपुत्र नामक स्थान पर हुआ। उनका कर्मक्षेत्र आज का पंजाब, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश बना और उनका ज्योतिजोत समाना या महाप्रयाण का स्थान सुदूर दक्षिण में नांदेड़ (महाराष्ट्र) था।

श्री गुरुग्रंथ साहिब जी में छः गुरु साहिबानों के साथ-साथ पन्द्रह भक्त साहिबानों, ग्यारह भट्ट साहिबानों और चार गुरसिखों की बाणियां भी अंकित है। ये सभी भारत के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के, भिन्न-भिन्न सामाजिक समूहों के हैं। जब हम श्री गुरुग्रंथ साहिब जी को माथा टेकते हैं, तो गुरुओं की बाणी को ही नमन् नहीं करते, अपितु इन सभी महापुरुषों की बाणियों को भी नमन् करते है। संत शिरोमणि भक्त रविदास जी महाराज, भक्त कबीरदास जी महाराज, भक्त सैण जी महाराज, भक्त नामदेव जी महाराज आदि सभी महापुरुष और उनकी बाणी हमारे लिए समान रूप से आदरणीय है।

सभी गुरुओं का उपदेश सांझीवालता का संदेश देता है। हम सभी देशवासी एक हैं। हम में विभिन्नताएं हो सकती हैं। विषमताएं भी हो सकती हैं। परन्तु सांझी विरासत होने के कारण हमारा ह्दय एक ही भाव से स्पंदित होता है, उसमें कोई अंतर नहीं है। निराशा के क्षणों में बनाए ऊंच-नीच के इस अंतर को पाटने के लिए ही गुरुओं ने **लंगर परंपरा** की सीख दी। एक ही **पंगत** में एक ही साथ बैठकर **संगत** भोजन कर सकती है। उसमें राजा हो, चाहे रंक हो। गुरुओं ने जाति-पाति, ऊंच-नीच, छोटा-बड़ा, धनी-निर्धन सभी के बीच व्याप्त अंतर को समाप्त करते हुए उन्हें एक साथ समरस होने का उपदेश दिया। वे अपना उपदेश अपने आचरण से देते थे। क्योंकि वे जानते थे कि सांझीवालता अथवा समरसता प्रचार से नहीं, बल्कि आचरण से आएगी। शायद इसलिए उन्होंने **भाई लालो** के घर सूखी रोटियां खाना ज्यादा पंसद किया, बजाए किसी धनी **मलिक भागो** के घर के स्वादिष्ट पकवानों के। मध्यकाल के ये सिद्ध पुरुष जाति-जाति में ऊंच और नीच की दीवारें तोड़ देना चाहते थे। जाति तो शरीर के समान है, शरीर नश्वर है। असली तत्व तो ज्ञान है।

सांझीवालता इसी ज्ञान से उत्पन्न होगी। जाति का झगड़ा मिथ्या है। इसी सांझीवालता को स्थापित करने के लिए और ऊंच-नीच की खाई को समाप्त करने के लिए दशम् गुरु श्री गोबिंद सिंह जी ने खालसा पंथ की स्थापना की। इससे जाति के सभी बंधन समाप्त हो गए। एक नए मनुष्य का जन्म हुआ। गुरु जी पहचान चुके थे कि भारत को सांझीवालता की भूमि पर खड़े इसी मनुष्य की तलाश है। भारत माता अपने इन्हीं पुत्रों की प्रतीक्षा कर रही थी, ताकि उसे आक्रांताओं की पराधीनता से छुटकारा मिल जाए। .... और खालसा ने सचमुच यह कर के दिखा दिया। भारत को आज भी उसी प्रयोग की आवश्यकता है, जिसे मध्यकाल में इसी दश-गुरु परंपरा ने सफलता से कर के दिखा दिया था। ●